ओ३म्

THE DANTYOSTHAVIDHIH

अथर्ववेदीय दन्त्योष्ठविधिः

अर्थात्

अथर्ववेद का चतुर्थ लक्षण ग्रन्थ।

भूमिका तथा टिप्पणीयुक्त आर्यभाषानुवाद

सहित।

सम्पादक

श्री पण्डित रामगोपाल शास्त्री

अध्यापक तथा रिसर्च स्कालर दयानन्द महाविद्यालय

लाहौर।

MAR

First Edition
1000 Copies.

P[redacted]



THE
DANTYOSTHAVIDIH

OR THE

FOURTH LAKSANA TREATISE
OF THE ATHARVA VEDA

EDITED WITH

AN INTRODUCTION, TRANSLATION AND AN INDEX

BY

PANDITA RAMAGOPALA SASTRI,

Professor and Research Scholar

D. A. V. College, Lahore.



MARCH 1921.

First Edition 1000 Copies.

P[illegible]hillings.

ओ३म्

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत-ग्रन्थमाला ।

अनेक विद्वानों की सहायता से

भगवद्दत्त
संस्कृताध्यापक वा अध्यक्ष अनुसन्धान-विभाग
दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर द्वारा
सम्पादित ।

ग्रन्थाङ्क ४ ।

श्रीमद्दयानन्द महाविद्यालय संस्कृतग्रन्थमाला सं० ४

ओ३म्

अथर्ववेदीय दन्त्योष्ठविधिः

अर्थात्

अथर्ववेद का चतुर्थ लक्षण ग्रन्थ।

भूमिका तथा टिप्पणीयुक्त आर्य्यभाषानुवाद सहित।

सम्पादक

श्री पण्डित रामगोपाल शास्त्री

अध्यापक तथा रीसर्च स्कालर दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर।

आर्य्य सम्वत् १९६०८५३०२०।

विक्रम सं० १९७७। सन् १९२१ ई०।

दयानन्दाब्द ३८।

प्रथम संस्करण १००० प्रति



पं० भैरवप्रसाद के प्रबन्धसे विद्याप्रकाश प्रेस, चङ्ङमहल्ला लाहौर में छपा।

Printed by Bhairo Prasada,
MANAGER, VIDYA PRAKASHA PRESS, LAHORE,
AND PUBLISHED BY
THE RESEARCH DEPARTMENT, D. A. V. COLLEGE, LAHORE.

The Publications of this series can also be had of—

1. Messrs. LUZAC & Co.,
46 Great Russell Street,
London W. C.

2. Lala Moti Lal Banarsi Dass, The Punjab Sanskrit Book Depot, Said Mittha Bazar, Lahore.

3. Lala Mehar Chand Lachman Dass, Sanskrit Booksellers, Said Mittha Bazar, Lahore.

4. Pt. Wazir Chand, Proprietor Vedic Book Depot, Mohan Lal Road, Lahore.

ओ३म्

दन्त्योष्ठविधिः ।

भूमिका ।

वेद संसार के साहित्य में सब से प्राचीन ग्रन्थ है। वेदाध्ययन से विदित होता है, कि इस में उन २ गम्भीर तत्त्वों का वर्णन है जिस का निर्म्माण मानवी-मस्तिष्क-शक्ति से परे है। आर्य्य लोगों का यह दृढ़ निश्चय है, कि सर्गारम्भ में स्वयमेव भगवान् ने इसे ऋषियों के हृदयों में प्रकट किया है।

वेद शब्द ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्व इन चार संहिताओं के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन आर्य्यों से लेकर आज तक आर्य्यों ने वेद को अपना प्राण समझा है। इस की रक्षा के लिये ही ऋषियों ने सहस्रों ग्रन्थ निर्म्माण किये हैं। वेद के पदों की रक्षा के लिये पदपाठ तथा वैदिक क्रम रक्षार्थ क्रमपा० आदि ग्रन्थों को रचा। प्राचीन आर्य्यों ने तो वेदों के अक्षर तक गिन छोड़े हैं। वेद की स्वरों की रक्षा के लिये उन्हों ने भिन्न २ प्रातिशाख्यों का निर्म्माण किया।

वेद का उत्तरकालीन प्रायः सारा का सारा आर्ष साहित्य ही प्रत्यक्ष वा परम्परा रूप से वेद का रक्षक है। वेदोच्चारण के लिये अत्यन्त सावधान रहने का निर्देश हमें प्राचीन

साहित्य में मिलता है। महाभाष्य प्रथमाह्निक में तो स्पष्ट ही लिख दिया है कि —

"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतो ऽपराधादिति ॥"*

अर्थात् स्वर और वर्ण से अशुद्ध प्रयुक्त किया हुआ शब्द अभीष्ट अर्थ के स्थान में विरुद्धार्थ को प्रकट करता है। इसी भाव को लक्ष्य में रख कर वेद में आये पदों के प्रत्यय वा पद की स्वरों का नियम अष्टाध्यायी तथा उनके अपने २ प्रातिशाख्यों में किया गया है।

यह "दन्त्योष्ठविधिः" नाम का छोटा सा ग्रन्थ वेद में आये हुए केवल "वकार" पद के उच्चारण स्थिर करने के निमित्त ही लिखा गया है। पुस्तक के आरम्भ के द्वितीय श्लोक में रचयिता ने स्वयं ही स्वरचना का प्रयोजन बता दिया है।

"वकारे संशयो नित्यमौष्ठ्यं दन्त्यमिति स्म ह" ।१।२। अर्थात् अथर्व संहिता में आये वकार युक्त पदों में नित्य संशय ही बना रहता है, कि क्या यहां वकार ओष्ठों से उच्चारित किया जावे वा दान्तों से। "तस्मात्तद्विधि निर्णये संशयच्छेदनाय च" ।१।३। उस वकारोच्चारण-विधि के जानने के लिये वा इस संशय का उच्छेदन करने के लिये, कि

* शिक्षाओं में "मन्त्रो हीनः स्वरतो......" पाठ है।

कहां यह वकार औष्ठ्य है और कहां दन्त्य है, इस पुस्तक का निर्म्माण किया गया है।

प्रतीत होता है, कि पुरातन काल में वर्णों के उच्चारण के सम्बन्ध में भी अनेक मत थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा सम्पादित पाणिनि मुनिकृत वर्णोच्चारण शिक्षा के अध्ययन से भी यही सिद्धान्त स्थिर होता है। "कवर्गमृवर्णश्च जिह्वयः।" "सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके।" "कण्ठ्यानास्यमात्रानित्येके।"

"ऋटुरषा मूर्द्धन्याः। रेफोदन्तमूलीय एकेषाम्।" "वकारो दन्त्यौष्ठ्यः।" "सृक्किणीस्थानमेके।"

इन ऊपर लिखे निदर्शनों से स्फुट है, कि भिन्न २ आचार्य्यों के मत में वर्णों के उच्चारण स्थान भी भिन्न २ हैं। ऊपर 'एके' तथा 'इत्येके' पद इस मत के द्योतक हैं। दन्त्योष्ठविधि के देखने से पूर्व मैं भी अथर्वसंहिता में आये वकारयुक्त पदों में आये हुए 'व' वर्ण का उच्चारण औष्ठ्य ही जानता था, क्योंकि पाणिनीय शिक्षा में "उपूपध्मानीया औष्ठ्याः।" पवर्ग का स्थान औष्ठ्य ही लिखा है। परन्तु दन्त्योष्ठविधि के अध्ययन से निश्चय हुआ है कि यह "वकार" पद भी अथर्ववेद के सर्व स्थलों में औष्ठ्य ही नहीं, प्रत्युत बहुत स्थलों में यह दन्त्य भी है। कहां २ यह दन्त्य है, और कहां २ औष्ठ्य है?

ईसा को निर्णय इस ग्रन्थ में किया गया है। यद्यपि इस पुस्तक का मुख्य उद्देश बकार पद के उच्चारण का निर्णय करना है, तो भी कहीं २ प्रासङ्गिक "वकारोच्चारण" का भी निर्णय कर कर दिया गया है। एतदर्थ देखो १।७ श्लोक की विस्तृत टिप्पणि।

यद्यपि यह पुस्तक आकृति में लघु है, तो भी इस का लाभ अत्यन्त भारी है। अनेकों पदों का उच्चारण-निर्णय इस पुस्तक द्वारा अब होगा। मैं इस लघु-पुस्तक-सम्पादन से अपने आप को अत्यन्त सफल समझता हूं; क्योंकि इस पुस्तक-सम्पादन द्वारा मैं कई एक ऐसे वेद के विवादास्पद पदों का निर्णय कर सका हूं, कि जिस के लिये बहुत काल से बड़े २ स्कालर झगड़ रहे थे। इस के लिये देखो "वैबाध" १।१।१। की टिप्पणि। "बहिष्ठः" २।३। टिप्पणि। "बद्धे बद्धानि।" २।५। टिप्पणि। इन श्लोकों की विस्तृत टिप्पणियों के अध्ययन से ही पाठक जान जायेंगे कि यह ग्रन्थ कितना लाभकारी है।

ग्रंथनाम का प्रयोजन — इस ग्रन्थ का नाम दन्त्योष्ठविधि है। इस के नाम से ही पता लग जाता है कि इस में दांत ओष्ठों में होने वाले पदों की विधि का निर्णय है। पूर्व हमने लिख दिया है कि इस में बकार कहां २ कैसे उच्चारित किया जाना चाहिये, यही प्रयोजन है॥

इनका सम्बन्ध — इस पुस्तक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अथर्वसंहिता से है, जिसे आज कल शौनकीय शाखा का अथर्ववेद कहा जाता है। पैप्पलाद शाखा से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं

प्रतीत होता। यद्यपि इसके लिये अन्य भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं, तो भी "वैबाध" १।११ पद तो स्पष्ट ही उदाहरण है। पैप्पलाद शाखा में अ० संहिता के ३।८।२ में आये 'वैबाध' पद के स्थान पर केवल "बाध" ही पद आया है। उस में 'वै' पूर्व में नहीं। यह एक ही उदाहरण इस बात का समर्थक है कि यह दन्त्योष्ठविधि इसी अथर्वसंहिता ही की है।

इसका निर्म्माता } इस पुस्तक का लेखक कौन है? इसका ज्ञान इस ग्रन्थ के अध्ययन से बिल्कुल नहीं होता।

इसका काल } पुस्तक का ठीक निर्म्माण काल बताना भी हमारे लिये अत्यन्त कठिन है। यह बात तो सिद्ध ही है कि अथर्ववेद के परिशिष्ट सायण के पूर्व के हैं। उन परिशिष्टों में ४९वां परिशिष्ट 'चरणव्यूह' है। उस में यह वचन है —

"लक्षणग्रन्था भवन्ति। चतुरध्यायी, प्रतिशाख्यम्, पञ्चपटलिका, दन्त्योष्ठविधिः, बृहत्सर्वानुक्रमणीचेति" ४।८

इस वचन से तो नितरां ही स्पष्ट है, कि यह पुस्तक अथर्ववेदीय परिशिष्टान्तर्गत चरणव्यूह से पूर्व की है। अन्य किसी भी ग्रन्थ में इसका निर्देश हमें नहीं मिला, अतः हम इसके विषय में अन्य कुछ अधिक लिखने के असमर्थ हैं।

हस्तलिखित सामग्री } इस ग्रंथ के सम्पादन करने में हम ने तीन आदर्श पुस्तकों की सहायता ली है। अ, तथा

ब. पुस्तकों के वर्णन के लिये देखो पं० भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित **अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका की** भूमिका पृष्ठ १ तथा २।
(प) इस का विशेष वर्णन गवर्नमेण्ट कौलेक्शन औफ मैनुस्क्रप्टस दक्कन कालेजपूना १९१६ की सूची के पृ० २९६ पर किया गया है। वहां इस का नं० ४०५ है और चतुरध्यायिका (शौनुकीया) के अन्तर्गत इसे लिखा गया है। यह पुस्तक उस में पत्र ५७ (क) की द्वितीय पंक्ति से आरम्भ होता है और प० ५८ (ख) की ७ वीं पंक्ति में समाप्त हो जाता है। इस पत्र की अन्तिम पंक्ति से चतुरध्यायिका अरम्भ होती है।

अ, ब, तथा प, इन तीन प्रकार के ही आदर्श पुस्तकों के आश्रय से इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। ये तीनों ग्रन्थ भी अत्यन्त प्रमाद से लिखे गये हैं। स्थान २ पर इन में अशुद्धियें हैं। यह बात पाठक पुस्तक में टिप्पणियों के अध्ययन से जान जायेंगे। आश्चर्य्य तो यह है कि जो अशुद्धि एक में है वही प्रायः दूसरे दोनों में पाई जाती है। कहीं २ कुछ थोड़ा सा भेद है। आदर्श पुस्तकों से पता तो यही लगाता है कि ये तीनों ग्रन्थ किसी एक ही परिवार के लिखे गये हैं। निरर्थक बिन्दु, अनुस्वार आदि स्थान २ पर दिये गये हैं। हम ने मूल में उन्हें नहीं दिया। मूल में बहुत स्थलों में हम ने जो पाठ शुद्ध करके दिया है, वह अथर्वसंहिता के आधार से ही दिया है। जहां २ पाठ शुद्ध किया गया है, वहां २ टिप्पणि में इस के हेतु आदि सब दिये हैं।

इस ग्रंथ के सम्पादन में पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० रिसर्चस्कालर द० ए० वे० कालिज लाहौर ने मुझे बहुत सहायता दी है। विशेष सहायता उन्हों नें मुझे मूल हस्तलेख के कठिन अक्षरों के पढ़नें में दी है, अतः मैं उन का अत्यन्त धन्यवाद करता हूं। अन्त में मैं श्री श्रीपाद कृष्ण बलवेलकर एम० ए० पी० एच० डी० महाशय का धन्यवाद किये विना नहीं रह सकता, जिन की कृपा से मुझे पूनें के भण्डारकर इन्स्टिच्यूट से तीनों मूल हस्तलेख प्राप्त हुए। मुझे आशा है, कि यह ग्रन्थ अथर्ववेदाध्यायियों को अवश्य लाभकारी होगा, अतः वेदाध्ययनइच्छुकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। यदि भविष्य में मूल संहिता मुद्रापक, इस पुस्तक में शुद्ध किये गए पदों को देख कर शुद्ध संहिता छापेंगे, तो मैं अपने यत्न को सफल समझूंगा, इति शम्।

द० ए० वे० कालिज
लालचन्द पुस्तकालय
लाहौर
फाल्गुण पूर्णिमा १९७७

रामगोपाल।

अथर्ववेदीय दन्त्योष्ठविधिः ।

ओ३म्

अथ दन्त्योष्ठविधिः ।

[प्रथमोऽध्यायः ।]

अथर्वाणमृषिं देवं देवहयशिरोधरम् ।

प्रणम्य सम्प्रवक्ष्यामि दन्त्योष्ठविधिविस्तरम् ॥१॥

दिव्य घोड़े की ग्रीवा को धारण किये हुए, (अर्थात् हयग्रीव) दिव्य गुणयुक्त अथर्वा ऋषि को प्रणाम करके, दन्त्योष्ठविधि के विस्तार को मैं कहूंगा ॥१॥*

* इस श्लोक में "देवहयशिरोधरम्" जो पाठ आया है, उस से इस श्लोक की अर्वाचीनता प्रकट होती है, क्योंकि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में इस प्रकार के भाव-युक्त पाठ नहीं हैं, अथवा यह श्लोक प्रक्षिप्त है ।

छन्दस्यध्ययने प्राप्ते विदुषामथ धीमताम्[1] ।

बकारे संशयो नित्यमौष्ठ्यं दन्त्यमिति स्म ह ॥२॥

इस के अनन्तर बुद्धिमान् विद्वानों के छन्द (वेद) के अध्ययन आरम्भ होने पर, वकार (शब्द) में नित्य संशय होता है। (वह संशय यह है, कि क्या बकार) औष्ठ्य (ओष्ठों=होंठों) से उच्चारित किया जाता है, वा दन्त्य (दान्तों से)? ॥२॥

(१) अ, ब, प, धीयताम् । लेखकों के प्रमाद से पाठ

अशुद्ध लिखा गया प्रतीत होता है, क्योंकि धीयतां का तो कुछ अर्थ ही यहां नहीं बनता और "धीमतां" यहां "विदुषां" का विशेषण होने में पाठ युक्त प्रतीत होता है, अतः हमने यह पाठ स्वयं शुद्ध किया है ॥

तस्मात्तद्विधि निर्णये[2] संशयछेदनाय च ।
मुक्त्वा दन्त्या[3] प्रयोज्याम[4] औष्ठ्यान् वक्ष्ये क्रमाहितः ॥३

इस लिये इस (वकारोच्चारण) विधि के निर्णय में, और संशय छेदन के लिये दन्त्य (वर्णों) को मुख खोल कर प्रयुक्त करे । मैं यहां क्रम से औष्ठ्य (होठों से उच्चारित किये जाने वाले पदों को) कहूंगा ॥३॥*

(२) अ, ब, प, "निर्णिते" । यह पाठ प्रमाद से लिखा गया प्रतीत होता है, क्योंकि ऐसा मानने से अर्थ कुछ नहीं बनता । शुद्ध पाठ हमनें "निर्णये" समझा है और वही मूल में दिया है ।

(३) प, "दन्त्यात्" । (४) प, प्रयोज्यास्तः ।

* यह श्लोक अत्यन्त अशुद्ध लिखा हुआ है । इसका उत्तरार्द्ध तो तीनों हस्तलेखों में ही पढ़ना कठिन है, अत एव अर्थ भी हमने आशय से ही किया है । शुद्ध अर्थ तो शुद्ध पाठ उपलब्ध होने से ही हो सकेगा ॥

भपरं यत्र दृश्येता[5]निंग्ये स्पर्शनं क्वचित् ।
औष्ठ्यं तत्र पदे धीरो बिभीतो बिभ्रतीर्यथा ॥४॥

जहां अनिंग्य पद अर्थात् अवग्रह (ऽ) न हो (प्रत्युत समस्त पद हो) उस में (यदि) वकार से परे भकार हो तो धीर पुरुष

वहां (बकार) को औष्ठ्य जाने । (इस का उदाहरण जैसे) "बिभीतः" अथर्व० २।१५।१ (तथा) "बिभ्रतीः" अथर्व० ३।१४।३ ॥४॥

(५) प, इश्येत ।

आद्युदात्ते बले बाणे बिल शब्दे तथैव च ।

समस्तेऽपि यत्र स्यातामन्तोदात्तो विशिष्यते ॥५॥

बल १।३५।३, बाण ६।१०५।२, तथा बिल १२।३।१३ शब्द आद्युदात्त हों तो (ये औष्ठ्य जाननें चाहियें)। समस्त पद में जहां (आद्युदात्त और अन्तोदात्त हो) वहां अन्तोदात्त की विशेषता है ॥५॥

(६) प, अन्त्योदात्तः ।

बलदाबलानुग्राबलधन्वा तथैव च ।

बलासं बाहू आचार्याः सर्वास्वेव विभक्तिषु ॥६॥

बलदा ४।२।५, अबलानुग्र ३।१६।७, अबलधन्वा ३।१६।७, और वैसे ही बलासं ५।२२।११, बाहू ४।२।५, आचार्य सब विभक्तियों में (इन्हें औष्ठ्य उच्चारित करते हैं) ॥६॥

(७) अ, व, प, "बाहूराचार्याः"। यह पाठ भी प्रमाद से लिखा गया प्रतीत होता है, क्योंकि दीर्घ ऊकारान्त 'बाहू', के आगे विसर्गों का होना अशुद्ध है। शुद्ध पाठ बाहू आचार्याः हमें प्रतीत हुआ है, जिसे हमने मूल में रख दिया है ॥

बली वलेन बर्हिश्चाबलेन बलीयसे ।
ब्रध्नः किल्बिषं वःकेतुः कुम्बं बाधिष्ट बालिति ॥७॥

बली ३।५।१, बलेन, बर्हिः ५।१.२।४, और अबलेन ३।२८।३, बलीयसे ३।२८।३, ब्रध्नः ७।२३।२, किल्बिषं ५।१.८।५ वःकेतुः ७।१.२।१, कुम्बं ६।१.३८।३, बाधिष्ट १.८।२।२५ बालिति १।३।१॥७॥

(८)अ, व, प, "वःकेतुः" । यह उदाहरण एक पद का वेद में नहीं है, किन्तु अथर्व ७।१२।१ के "ऋष्वो दैवः केतुः" पाठ में केतुः के पूर्व 'दैवः" का अन्तिम भाग "वः" है । प्रतीत होता है, कि दन्त्योष्ठविधि-निर्म्माता का यह आशय है, कि केतुः से पूर्व वः का उच्चारण औष्ठ्य हो, दन्त्य नहीं । यद्यपि यहां पर बकार वर्ण पर संशय है वकार पर नहीं, तो भी प्रासङ्गिक वकार का भी निर्णय है । इस विधि में "नवमः" अ०१ श्लो १०, "षड्वींशं" २।३ तथा "वयः" २।६, २।२ पद भी ऐसे ही हैं, जिन में वकार का ही निर्णय किया गया है, बकार का नहीं । यजुर्वेदीय माण्डव्य शिक्षा में भी जहां पर औष्ठ्य पदों का संग्रह किया है, वहां वकार के प्रकरण में "ध्रुव क्षिति" "द्वयं" "वाजश्च मे" "षड्वींश द्वयं" इत्यादि वकार सम्बन्धी उदाहरण भी दिये हैं । (देखो बनारस में ब्रज० बी० दास कम्पनी द्वारा प्रकाशित शिक्षासंग्रह में माण्डव्य शिक्षा) । इसी प्रकार अमोघानन्दिनी शिक्षा के पृ० १ श्लो० ८ में भी औष्ठ्य संग्रह में वकार के प्रकरण में "षड्वींशं" वकार पद का भी उदाहरण दिया है । अतः प्रतीत होता है कि यहां पर व प्रकरण में वकार भी औष्ठ्य ही है ।

बाहुं बोधि[9] तथा बंधुर्बहुबाधे बृहच्च यत् ।
पिबति ब्रुवते[10] चैव यथार्थाः सम्प्रकीर्त्तिताः ॥८॥

बाहुं १।८।१।१, बोधि ४।३२।६, (तथा) बंधुः २।१।३, बहु १।१०।३, बाधे ४।३५।७ और बृहत् ३।८।१, पिबति ५।५।२, और ब्रुवते २०।१३८।३, ये सब यथार्थ पद कहे गये हैं ॥८॥

(९) अ, प, "बोधु", ब० "बोधी", अ० वेद में दोनों प्रकार का ही पाठ नहीं है। अतः मूल में हम ने "बोधि" पाठ दिया है, जो कि वेद के ४।३२।३ मन्त्र में मिलता है। आदर्श पुस्तकों में लेखकों की भूल प्रतीत होती है ॥

(१०) अ, ब, प, "ब्रुवातिश्चैव"। मूल में इस के स्थान पर हमने "ब्रुवते चैव" पाठ दिया है। इस का प्रथम कारण यह है, कि अथर्ववेद में "ब्रुवति" पद कहीं भी नहीं है, और द्वितीय हेतु यह है, कि यहां क्रिया पद के अन्त में विसर्गों का होना अशुद्ध है। प्रतीत होता है कि "ब्रुवातिः" पाठ "ब्रुवते" के स्थान में लेखकों के प्रमाद से अशुद्ध ही लिखा गया है।

वस्तवासिनो[11] बाह्वंकैर्बाहुवीर्यै तथैव च ।
बहवः[12] काववं[13] बाह्वोर्बोध[14] बह्वे तथैव च ॥९॥

वैसे ही वस्तवासिनः ८।६।१२, बाह्वंकैः ११।११।१२, बाहुवीर्यै ५।२१।१०, और वैसे ही बहवः १।२७।३, काववम् ३।६।३, बाह्वोः १९।६०।२, बोध २०।११७।३ और बह्वे ॥९॥

(११) अ, ब, "वस्त बासिन" प, "बस्तवासिन"। तीनों लेख पुस्तकों में पाठ विसर्ग रहित है, परन्तु संहिता में पाठ विसर्गान्त है, अतः हमनें संहिता के अनुकूल ही मूल में पाठ शुद्ध किया है। विसर्ग लेखकों के प्रमाद से छूट गये हैं । पैप्पलाद-संहिता का पाठ "वस्तवासिनः" है।

(१२) अ, ब, प, "कावद्गः"। संहिता का पाठ अनुस्वारांत है, अतः मूल में हमने पाठ काववं दिया है । लेखकों ने प्रमाद से अनुस्वार के स्थान पर विसर्ग दे दिये हैं। पै० सं० "काववम्"

(१३) अ, ब, प, "बाह्वैः"। संहिता में यह पद कहीं नहीं। प्रतीत होता है कि "वाह्वोः" के स्थान पर ही लेखकों के प्रमाद से 'बाह्वैः' लिखा गया है, मूल में हमने वाह्वोः पद ही दिया है॥

(१४) अ, प, वह्वैः व, वह्वै। संहिता में दोनों में से एक पाठ भी नहीं। शुद्ध क्या होना चाहिये यह हम निश्चय नहीं कर सके। अन्य हस्तलेख के मिलने से शुद्ध पाठ का निर्णय हो सकेगा॥

तथा वध्न्यं[१५] तावुवं[१६] वह्वीर्नवमः संप्रकीर्त्तिताः ।
एते सर्वेषु शब्देषु[१७] प्रथमस्पर्श्या हि मताः ॥१०॥

वैसे ही वध्न्यं, तावुवं ५।१३।१०, वह्वीः ६।८६।१, नवमः १३।५।५, ये (पद) सब शब्दों में प्रथम स्पर्श्य (अर्थात् स्पर्शों में होने वाला "व" वर्ण है प्रथम, पूर्व में जिन के) ऐसे माने गये हैं ॥१०॥

(१५) अ, व, "वध्न्यं; प, वर्ध्यं"। संहिता में दोनों में से एक पाठ भी नहीं मिलता । वास्तविक पाठ यहां क्या होना

चाहिये ? यह लिखना अभी कठिन है। शुद्ध पाठ अन्य किसी ह० लि० ग्रन्थ के मिलने से किया जा सकेगा।

(१६) यह पद भी वकारोच्चारण के उदाहरण में ही जानना चाहिये। इस पर विशेष, १।७ की टिप्पणी में देखो।

(१७) अ व, "प्रथमा स्पर्शायाः" प, स्पर्शायात्मता ये पाठ अशुद्ध प्रतीत होते हैं, क्योंकि इस प्रकार पाठ मानने से अर्थ कुछ नहीं बनता। हमारी सम्मति में समस्त पद 'प्रथम स्पर्श्याः' शुद्ध है। आगे के १।११ श्लोक में पाठ "द्वितीय स्पर्शयो" है। यद्यपि वहां पर भी स्पर्श्यः के स्थान पर स्पर्शयः पाठ अशुद्ध लिखा हुआ है, तो भी द्वितीय के साथ यह पद समस्त है। वैसे ही यदि यहां भी समस्त मानें तो अर्थ ठीक निकल आता है। हमने जो पाठ शुद्ध किया है, उस में एक आपत्ति आती है, कि चतुर्थपाद के अक्षर आठ के स्थान पर सात बनते हैं; जिस से छन्दो भङ्ग होता है। उस छन्दो भङ्ग दोष निवृत्ति के लिये "हि" अक्षर हमने मूल में स्वयं डाला है। किसी अन्य शुद्ध आदर्श पुस्तक (mss.) के मिलने से हम ठीक तौर पर बता सकेंगे, कि यहां क्या पाठ होना चाहिये, परन्तु अभी तक हमें यही पाठ अनुकूल प्रतीत हुआ है, जो हमने मूल में दे दिया है।

* वैबाध[१८] देवबन्धुं[१९] च विबद्धस्तु[२०] विबन्धुषु।
द्वितीय स्पर्श्यो[२१] विज्ञेयो विबबाधे[२२] तथैव च ॥११॥

वैबाध ३।६।२, देवबन्धुं ४।१।७, और विबद्धः ५।२०।२, विबंधुषु १८।२।५७, (ये पद) द्वितीय स्पर्श्य (अर्थात् स्पर्श वर्णान्तर्गत ब, वर्ण है द्वितीय जिनका) जानने चाहिये। ऐसे ही विबबाधे ८।८।६ ॥११॥

(१८) अ, "वैबाधः", व, "वैबाधं"। संहिता में "वैबाध" सम्बोधन पद है। प्रतीत होता है, कि ब. के अन्त में अनुस्वार और अ, में विसर्ग प्रमाद से दिये गये हैं। पंचोली परिवार के जितने भी हस्तलिखित ग्रंथ हमने देखे हैं, उनमें बहुत स्थलों पर निरर्थक ही अनुस्वार दिये हुए हैं। "ब्रह्म" पद को प्रायः "ब्रह्मं" लिखा है। अतः प, का पाठ "वैबाध!" शुद्ध है। पदपाठ में इस पद को "वोधतः" के साथ रख कर समस्त पद किया है, परन्तु यह ठीक नहीं। दन्त्योष्ठविधिः के अध्ययन से यह स्वतंत्र भिन्न पद सिद्ध है। सायणाचार्य्य ने भी इसे ३।८।२ में भिन्न सम्बोधन पद मान कर अर्थ किया है। ह्विट्ने (Whitney) ने भी इस मंत्र की टिप्पणी में "वैबाध", पद पर (वैबर) Weber का मत दिखाकर इसे स्वतंत्र पद माना है. समस्त नहीं। पैप्पलादसंहिता में "बाध" पद है "वैबाध" नहीं।

(१९) अ०"विबद्धास्तु", व०"विवधास्तु",प० विदह्वीस्तु। शुद्ध पद वेद में "विबद्धः" आता है। प्रतीत होता है, कि अ० के लेखकों ने इसे बहुवचनान्त पाठ अपने प्रमाद से किया है। अन्य व, प का पाठ तो नितरां अशुद्ध है। ह्विट्नें ने ५।२०।२ के मन्त्रानुवाद में "विबद्धः" के स्थान में stretchedके आगे वंधनी (   ) में "विवन्ध (vi-bandh) ऐसा पाठ दिया है। ह्विट्ने का यह पाठ भेद अशुद्ध है, क्यों कि किसी में भी इस का पाठ भेद नहीं मिला और साथ दन्त्योष्ठविधि ने भी निर्णय कर दिया है, कि शुद्ध पाठ क्या है। ८।११२।३ में भी "विबद्धः" पद आया है "विबंध" पद तो सारे अथर्व वेद में कहीं भी नहीं, अतः ह्विट्ने का मूल में ऐसा पाठ देना निराधार है।

(२०) अ० प० "विबंधिपु",व, "विवंधीषु" ये दोनों प्रकार के पाठ अशुद्ध हैं, क्यों कि इन का मूल वेद में नहीं। हमें इस के स्थान

पर "विवेधुपु" ८।२।५७ पाठ उचित प्रतीत हुआ है और उसे ही हम ने मूल में दे दिया है।

(२१) अ० व, प, द्वितीय स्पर्शयः। यहां पर द्वितीय स्पर्श्यः पाठ शुद्ध प्रतीत हुआ है, अतः मूल में १।१० की तरह इसे भी शुद्ध करके रख दिया है।

(२२) अ० "विवधे", व० "विवधार्थे", प० विवधार्थं। व० का पाठ कुछ शुद्ध लिखा हुआ है, परन्तु वहां भी एकारान्त के स्थान में ऐकारान्त पाठ अशुद्ध है। शुद्ध पाठ "विवबाधे" ८।६।८। है। अ० प० का तो पाठ सर्वथा अशुद्ध है।

*इस श्लोक में विशेष वक्तव्य यह है, कि यहां पर प्रत्येक उदाहरण में वकार द्वितीय वर्ण स्थान में है और वकार प्रथम। इसी आशय से इन उदाहरणों के लिये मूल में द्वितीयस्पर्श्यः पाठ आया है।

वाहौ वाहवो वहुलं वुध्न्या वद्धकमेव च।
*एते सर्वे भवन्त्योष्ठ्या ये नोक्तास्ते तु दन्तजाः॥१२॥

वाहौ २।२७।३, वाहवः ३।१८।७॥ वहुलं ४।१५।६, वुध्न्या ४।१।१, और वद्धकम ६।१२।४, ये सब (पद) ओष्ठ्य हैं और जो (यहां) नहीं पढ़े गये वे दन्तज अर्थात् दन्त्य हैं॥१२॥

(२३) व, प, वाह। वेद में यह पद कहीं नहीं अतः हम ने इस के स्थान पर "वाहौ" पद स्वयं मूल में दिया है॥

(२४) अ० व० "वहुलम"

*यहां पर १२वें श्लोक के आगे फिर १म श्लोक से पाठ आरंभ होता है, अतः प्रतीत होता है, कि यहां से दन्त्योष्ठविधि का द्वितीय अध्याय आरम्भ होता है यहां अध्याय का क्रम हमारा है।

इति प्रथमोऽध्यायः।

[illegible] पुस्तकों के पाठ में विसर्ग [illegible] है, [illegible] शुद्ध है, अतः हमने मूल में [illegible] है।

[illegible] से है। इस पर [illegible] किया है, वहाँ देखो। अ, ब, [illegible]।

[illegible]।

[illegible] नहीं।

[illegible]।

[illegible] कंबूकाँ पलिनस्तथा :
[illegible] परिवेविरे ॥४॥

[illegible] १०।४।२, कंबूकाँ [illegible] ८।१४।१०, स्तस्वजं [illegible] परिवेविरे [illegible] ॥४॥

[illegible] ये दोनों पाठ अशुद्ध हैं, [illegible] है, जिसे हमने मूल में दिया है।

[illegible] पुस्तकों में विसर्ग छूटे हुए हैं।

[illegible] पुस्तकों में यह पाठ बिल्कुल नहीं पढ़ा जाता। [illegible] गया है, परन्तु वेद में यह पाठ नहीं। [illegible] वेद में "[illegible]" पाठ मिलता है। यदि यह पाठ यहाँ माना जावे तो छन्दोभङ्ग होता है, अतः वास्तविक पाठ यहाँ चिन्तनीय है।

३ ४ ५
वहिष्ठैः बुध्न्यः पड्वीशमर्बुदं बधिरस्तथा ।
६ ७ ८
आवयोविन्दुः संविंवं काहाबाहुदुम्बलम् ॥३॥

वहिष्ठैः ४।३४।५, बुध्न्यः १।८।१।१।३, पड्वीशं ८।१।४, अर्बुदम् ११।१।१।५, तथा बधिरः ११।४।२, आवयो ६।१६।१, बिन्दुः ८।१।२१, संबिंबम्, काहाबाहम् ८।१३।११, उदुम्बलम् ८।६।१७॥३॥

अ,ब, प, "वहिष्ठे" यह पाठ भी लेखकों की भूल से अशुद्ध लिखा गया है। शुद्ध पाठ "वहिष्ठैः" है जिसे हम ने मूल में देदिया है। इस पद पर भी बहुत विवाद था। शङ्कर पाण्डुरंग ने ४।३४।५ में आये हुए, इस पद को मूल तथा पद पाठ में "बहिष्ठैः" ही के रूप में दिया है। रॉथ ह्विटनें के अ० वेद में पाठ "वहिष्ठैः" है, सायणाचार्य्य ने भी भाष्य में "वहिष्ठैः" वकारादि पद मान कर ही अर्थ किया है। ह्विटनें ने अंग्रेजी भाष्य में इस मंत्र की टिप्पणी में ऐसा लिखा है,

The mss. (with the exception, doubtless accidental, of our P. k. all read bàhisthas at end of a, and this S. PP. retains, while our text makes the obviously called for emendation to vàh, the comm. has vàh.

इस ऊपर के लेख में ह्विटनें ने भी "वहिष्ठैः" पाठ स्वीकार किया है। Vedic concordance वैदिक कनकार्डेन्स में ब्लूमफील्ड ने भी पृ० ३०६ में वकारादि पाठ ही माना है, बकारादि नहीं, परन्तु हमारी सम्मति में शंकर पाण्डुरंग का पाठ शुद्ध है, क्योंकि दन्त्योष्ठविधि में इसे बकारादि से ही लिखा गया है। अतः सायण, रॉथ, ह्विटनें आदियों की कल्पना ठीक नहीं।

(४) अ, ब, प, लुब्न्य। आदर्श पुस्तकों के पाठ में विसर्ग नहीं है, परन्तु यह पाठ विसर्गान्त शुद्ध है, अतः हमने मूल में विसर्गान्त पाठ दिया है।

(५) "पड्वीशं" भी वकार के उदाहरण में है। इस पर हमने १।७ की टिप्पणी में विशेष लिखा है, वहां देखो। अ, ब, "पड्वीशमर्बुदं" प, "पड्वीशदर्बुदम्"।

(६) अ, ब, "विन्दु" प, "विंदु"।

(७) यह पद वेद में नहीं।

(८) प, "काहाब्रीहं"।

कब्रु पीबसि बंधुरं[९] कंबूकाँ बलिनस्तथा :

[१०]कुबेरः स्तम्बजं [११]बभ्रौपब्दैः परिबेधिरे ॥४॥

कब्रु ११।३।६, पीबसि १।११।४, बधुंरं १०।४।२, कंबूकाँ ११।१।२६, तथा बालिनः १।४।१२, कुबेरः ८।१४।१०, स्तम्बजं ८।६।५, बभ्रोपब्दैः, परिबेधिरे ६।१३३।५,॥४॥

(९) अ, प, "कम्बूका", ब, "कबुका"। ये दोनों पाठ अशुद्ध है, वेद में पाठ "कंबूकान्" है, जिसे हमने मूल में दिया है।

(१०) अ, ब, प, "कुबेर"। आदर्श पुस्तकों में विसर्ग छूटे हुए हैं।

(११) आदर्श पुस्तकों में यह पाठ बिल्कुल नहीं पढ़ा जाता। हम से यह पाठ "बभ्रोपब्दैः"पढ़ा गया है,परन्तु वेद में यह पाठ नहीं। इस के साथ मिलता हुआ वेद में "बभ्रोरपोदकस्य" पाठ मिलता है। यदि यह पाठ यहां माना जावे तो छन्दोभङ्ग होता है, अतः वास्तविक पाठ यहां चिन्तनीय है॥

असंबाधे नैर्बाध्येन बद्धे बद्धानि[12] कूल्बजं[13] ।

बतो बतासि बंधुं च बिसं क्लीबं बुजे बुजः[14] ॥५॥

असंबाधे १८।२।२०, नैर्बाध्येन ६।७५।१, बद्धे बद्धानि १३।४।४५, कूल्बजं १२।७।१, बतो बतासि १८।१।१५, बंधुं ५।१।३।७, बिसं ५।१७।१६, क्लीबं ६।१३८।१, बुजेबुजः ॥५॥

(१२) "बद्धे बद्धानि" पदों पर बहुत विवाद था। दन्त्योष्ठविधि ने इस का पूरा निर्णय कर दिया है। यह पद अ० वेद १३।४।४५ में आये हैं। शङ्कर पाण्डुरङ्ग सम्पादित वेद में पाठ "वध्वे वद्धानि" है। शङ्कर पा० ने इस पर बहुत से पाठ भेद नीचे उद्धृत किये हैं। A. D. S "वध्वे वद्धा" R. वध्द्वे वद्धा। Cs वध्वे वधा। E वद्ध्वे वद्धा। B C P J वद्धे वद्धा। P वद्धे वद्धानि। K K V वध्वे वद्धा। D C वद्धे वद्धा Changed to वध्वे वद्धा। C P वद्धे वद्धानि Changed from वद्धे वद्धानि। R W वद्धे वद्धानि।

रॉथ तथा ह्विटनें द्वारा सम्पादित अ० संहिता में "बद्धे बद्धानि" पाठ है। १८८४ में सत्यनारायण प्रेस बंबई में सेवकलाल ने भी रॉथ वाले वेद की नकल करके पाठ वही दिया है। अजमेर वैदिक यन्त्रालय वालों ने शंकर पाण्डुरंग के अशुद्ध पाठ की नकल करके पाठ अशुद्ध ही छापा है (अजमेर यंत्रालय में कार्य्य अत्यन्त असावधानी से होता है अतः उन के ग्रन्थों में जहां तहां अशुद्धियें भी बहुत हैं) १९०५ में Harvard oriental series में जो अथर्व संहिता का English अनुवाद ह्विटनें ने निकाला है, उस में इस पद पर उसने एक बड़ी दीर्घ टिप्पणी लिखी है :—

The translation emplies the readings "बद्वे बद्वानि" on account of the accent. which seem probably meant by the mss. which vary between वध्व-, बद्व-,बद्ध-,,k reads बद्धे बद्वानि, D बद्वे बद्धानि SPP's authorities also exhibit very wide disagreements, which reflect a corresponding uncertainty of the tradition.) The word is just such a one as the mss. might be expected to boggle and blunder over, both they and we being left without help from the sense. Henry, who accepts the same emendation, understands (बद्वे) badve as Locative, which is perhaps better, and at any rate favored by the fact that the पद text does not read बद्व इति.

इस ऊपर के लेख से ह्विटनें नें यह सिद्ध किया है, कि वास्तविक पाठ "वद्वे वद्वानि" होना चाहिये और अन्य पाठ अशुद्ध हैं। ह्विटनें की यह बात ठीक नहीं १८५६ में जो ह्विटनें नें राँथ के साथ मिलकर संहिता छपवाई थी उस में तो उसने "बद्धे बद्धानि' पाठ दिया है। प्रतीत होता है कुछ काल पीछे ह्विटनें ने विचार बदल कर कहीं पर पाठ भेद वाला लेख लिखा था, इस बात का खण्डन Griffth ग्रिफथ ने अपने अनुवाद की टिप्पणी में कर दिया है। ऐसा लिखने पर भी १६०५ में अपने अनुवाद में ह्विटनें नें पाठ "वद्धे वद्वानि" ही लिखा है; परन्तु यह अशुद्ध है। हमारे पक्ष को जहां अन्य कई हस्तलिखित mss. पुष्ट कर रहे हैं, वहां पर दन्त्योष्ठविधि ने तो सारा पक्ष ही स्फुट कर दिया है। अ० संहिता सम्पादकों को चाहिये कि आगे से इस पाठ को शुद्ध करके 'बद्धे बद्धानि' ही लिखें।

(१३) अ, व, कुल्वजं; प० कुलजं। शुद्ध पाठ कुल्वजं॥

(१४) अ, ब, युजे वुजः ; प० वुजे वुजः । अथ० संहिता में न अ, ब, का पाठ है और न ही प, का । आदर्श पुस्तकें तीनों ही बड़े प्रमाद से लिखी हुई हैं, अतः शुद्ध पाठ का निर्णय करना कठिन है । मूल में हमने प० का पाठ दिया है, क्योंकि इस श्लोक में वद्धे वद्धानि, वतो वतास्ति, की न्याईं यह भी पद युगल ही प्रतीत होता है । संहिता में "वजः" पद ८।६।३,६,७,२४। में आया है, जिस के साथ यह पद कुछ मिलता है, परन्तु वहां भी वजे वजः इकट्ठा पाठ नहीं, अतः पाठ का वास्तविक स्वरूप चिन्तनीय है ।

वधान[१५] प्रावंधायारचोल्वं[१६] कावेरकस्तथा ।
आवेधुरैलवश्चैवावेधे[१७] वल्हिकानिच[१८] ॥६॥

वधान १०।५१।८४, प्रावंधायाः, और उल्वं ४।२।८, तथा कावेरकः ८।१४।११, आवेधुः ८।३।६, ऐलवः ६।१६।३, आवेधे ५।२८।११, और वल्हिकान् ५।२२।७ ॥६॥

(१५) अ, ब, बंधनं ।

(१६) यह पद वेद में नहीं । यह पाठ शुद्ध नहीं पढ़ा जाता शुद्ध पद क्या है, यह चिन्तनीय है ।

(१७) अ, ब, आवधे ।

(१८) अ, ब, प, वल्हिकानि । वेद में यह पाठ नहीं । प्रतीत होता है, कि आदर्श पुस्तकों में पाठ अशुद्ध है ।

अबोधि बार्हत्सामे घोपबुद्धा[१९] तथैव च ।
बंधनं यत्र शेषं स्यादावधे मे निदर्शनम् ॥७॥

अबोधि १।३।२।४६, बार्हत्सामे ५।२८।१५, घोपबुद्धा ५।२०।५,

वैसे ही वंधनं ६।१.४।२, जहां शेष रहता है। आवधे ५।२८।११, मेरा उदाहरण है ॥७॥

(१९) अ, ब, "वोष बुद्धाः", ब, "घाषुबुद्धाः" दोनों पाठ प्रमाद से लिखे गये हैं, शुद्ध पाठ संहिता के अनुकूल हमने मूल में दे दिया है।

अलाबु[20] वजः[21] बाणं स्यादाद्युदात्तो यदा भवेत् ।

ब्रह्म शब्दं तु सर्वार्थमौष्ठ्यमेव विदुर्बुधाः[22] ॥८॥

अलाबु ८।१४।१.४, वजः ८।६।३, बाणं १०।२।१७ यह पद समूह जब आद्युदात्त हो तो औष्ठ्य हैं। ब्रह्म १।१०।४ पद तो सब अर्थों में ही बुद्धिमान् औष्ठ्य जानें।

(२०) ८।१५।१ में यह पद "अलाबुना" के रूप में आया है और ८।१४।१४ में "अलाबुपात्रम्" के साथ आया है। हमने ८।१४।१४ के साथ आये सम्बद्ध पद को मूल में रक्खा है।

(२१) अ, व, प. "बुज"। आदर्श पुस्तकों में जो बकार में बकार है वह प्रमाद से लिखा हुआ है।

(२२) अ, व, प. "बुधान्"। आदर्श पुस्तकों का पाठ अशुद्ध लिखा हुआ है, शुद्ध पाठ हमने "बुधाः" दिया है।

छुबुकाद्[23] वष्कये[24] बाले केशवाले[25] तथैव च ।

अधिबाले[26] वयः[27] प्रोक्तं शेपेषु परिमाणतः[28] ॥९॥

छुबुकाद २।३.३।१, वष्कये ६।१.४।६, बाले, केशवाले

वैसे ही अधिवाले और वयः २०।१८९।१५, शेष (पदों में) परिमाण से ही (औष्ठ्य पदों का निर्णय करे)

(२३) अ, ब, प, "वष्कयोः"। लेखकों के भ्रम से अशुद्ध लिखा गया है, शुद्ध पाठ "वष्कये" है जिसे हमने मूल में रक्खा है।

(२४, २५, २६) बाले, केशबाले तथा अधिवाले पद वेद में नहीं हैं, अतः ये पद चिन्तनीय हैं।

(२७) यह पद वकार के उदाहरण का है, इस पर विशेष लेख हमने १।७ की टिप्पणी पर दिया है।

(२८) अ, ब, प, "परिमाणताः"। प्रतीत होता है आदर्श पुस्तकों में तकार के अन्त में आकार प्रमाद से लिखा गया है।

बिभेदादिषु[२९] भेदान्न परि पूर्वं बले[३०] तथा।
बंधु[३१] वा सिंधुरपर एतेषां तु बलः[३२] क्वचित् ॥१०॥

बिभेद २।५।३, आदि के अन्य भेदों में (अर्थात् बिभिदुः २०।७७।६, आदि पदों में) तथा परि पूर्वक "बले" पद में "बंधु" ॥१०॥

(२९) प, बिभिदादिषु।

(३०) यद्यपि बले पद अ० वेद में २।२८।१, और ११।८।१७ में आया है, परन्तु इस के पूर्व परि उपसर्ग कहीं भी नहीं आया; अतः यह पद भी विचारणीय है।

(३१) बंधु पद ५।१३।७ में आया है, परन्तु श्लोक के अर्थ से जो सिन्धुरपर आया है, उस सिन्धु पद के साथ यह नहीं आया। विशेष बात तो यह है, कि इस श्लोक का उत्तरार्ध का अर्थ हमें समझ नहीं आया, इसी लिये हमने इस का अर्थ नहीं किया।

(३२) अ, व, प, बलः । वेद में विसर्गान्त पाठ नहीं, संहिता में या तो 'बलम्' १।३५।३ पाठ है वा "बला" १।१।१ है । लेख का पाठ चिन्तनीय है ।

[33]तुछुन्दरश्[34]चुबुकश्चैव बभूवुश्च बभूवुषी ।
एते सर्वे[35] परित्यज्य बकारोन्योन्य भक्षन[36] ॥११॥

तुछुन्दः, चुचुकः और बभूवुः ८।२।२२ और बभूवुषी ८।१५।२१, इन सब को छोड़ कर बकार परस्पर ॥११॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ।

दन्त्योष्ठविधिःसमाप्तः ॥

(३३) अ, ब, तुछुन्दः, प० कुछुन्दः । आदर्श पुस्तकों का लेख इतना अशुद्ध है, कि वास्तविक पद पढ़ने कठिन हैं । यह पद वेद में नहीं हैं । इस का वास्तविक निर्णय अन्य ह० लि० ग्रंथ के मिलने से होगा ।

(३४) चुचुकः भी संहिता में नहीं ।

(३५) अ, प, एताः सर्वाः, व "एताः सर्वे"। शुद्ध पाठ हमें एते सर्वे प्रतीत हुआ है, अतः यही पाठ मूल में दिया है।

(३६) श्लोक का चतुर्थ पाद बहुत ही अस्पष्ट है, अ, व, वकारोन्यान्य भक्षन । भक्षयेदिति, प, बकारान्यौन्य भक्षदिति ॥ इस का पाठ शुद्ध न होने से हम अर्थ नहीं कर सके, यदि कोई और हस्त लिखित ग्रंथ मिलेंगे तो शुद्ध पाठ देखकर अर्थ शुद्ध किया जावेगा ॥

इति दन्त्योष्ठविधिभाषानुवादसहितःसमाप्तः ।

दन्त्योष्ठविधि पद सूची।

|| ओ३म् ||

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला ।

इस ग्रन्थ माला में संस्कृत के प्राचीन आर्ष अलभ्य अमूल्य और अप्रकाशित ग्रन्थ छपते हैं । कई एक आर्ष ग्रन्थों के अनुवाद तथा वेद संरक्षक स्वतंत्र पुस्तकें भी प्रकाशित होती हैं । इस ग्रन्थ-माला से आर्ष साहित्य की कितनी सेवा हो रही है, यह पाठक ग्रन्थावलोकन से ही जान सकते हैं । इस ग्रन्थ माला में अधिक से अधिक पांच रूपये वर्ष के ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं । स्थायीग्राहक बनने का शुल्क ॥) है ।

स्थायीग्राहकों को ग्रन्थ ¾ मूल्य पर मिलते हैं । वैदिक साहित्य प्रेमियों को इस ग्रन्थमाला का स्थायीग्राहक शीघ्र ही बन जाना चाहिये ।

प्रकाशित पुस्तकें:—

(१) अथर्ववेदीय पंच पटलिका ।
(२) ऋग्वेद पर व्याख्यान ।
(३) जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण ।
(४) दन्त्योष्ठ विधि ।

पुस्तकें जो प्रेस के लिये तय्यार हैं:—

(१) वैदिक कोश (शाखा ब्राह्मणादि में किये गये वेद-पदार्थ का संग्रह ।

वेद में यम का स्वरूप ।

(३) अथर्ववेदीय माण्डूकी शिक्षा ।

पुस्तकें जो प्रेस के लिये तय्यार हो रही हैं ।

(१) अथर्ववेदीय बहुत सी पुस्तकें ।
(२) जैमिनीय ब्राह्मण ।

भगवद्दत्त
सुपरिटेण्डेण्ट रिसर्च विभाग
दयानन्द महाविद्यालय लाहौर ।

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला ।

इस ग्रन्थ माला में संस्कृत के प्राचीन आर्ष अलभ्य अमूल्य और अप्रकाशित ग्रन्थ छपते हैं। कई एक आर्ष ग्रन्थों के अनुवाद तथा वेद संरक्षक स्वतंत्र पुस्तकें भी प्रकाशित होती हैं। इस ग्रन्थ-माला से आर्ष साहित्य की कितनी सेवा हो रही है, यह पाठक ग्रन्थावलोकन से ही जान सकते हैं। इस ग्रन्थ माला में अधिक से अधिक पांच रूपय वर्ष के ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं। स्थायीग्राहक बनने का शुल्क ॥) है।

स्थायीग्राहकों को ग्रन्थ ¾ मूल्य पर मिलते हैं। वैदिक साहित्य प्रेमियों को इस ग्रन्थमाला का स्थायीग्राहक शीघ्र ही बन जाना चाहिये।

प्रकाशित पुस्तकें:—

(१) अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका।
(२) ऋग्वेद पर व्याख्यान।
(३) जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण।
(४) दन्त्योष्ठविधिः।

पुस्तकें जो प्रेस के लिये तय्यार हैं:—

(१) वैदिक कोश (शाखा ब्राह्मणादि में किये गये वेद-पदार्थ का संग्रह।
(२) वेद में यम का स्वरूप।
(३) अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा।

पुस्तकें जो प्रेस के लिये तय्यार हो रही हैं।

(१) अथर्ववेदीय बहुत सी पुस्तकें।
(२) जैमिनीय ब्राह्मण।

भगवद्दत्त

सुप्रिंटेण्डेण्ट रिसर्च विभाग

दयानन्द महाविद्यालय लाहौर।